शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2014

सम्पादकीय
आसमानी और सुल्तानी शक्तियों के बीच पिसता देश का किसान

डॉ.पुष्पेंद्र दुबे

मध्यप्रदेश में विगत दिनों हुई ओलावृष्टि में करीब नौ हजार हेक्टेयर में लगी गेहूं की फसल बर्बाद हो गयी। यह स्थित देश किसी भी हिस्से में जब-तब निर्मित होती रहती है। वास्तव में इस देश का किसान प्रारंभ से ही दो शक्तियों के बीच पिसता रहा है। एक तो है आसमानी और दूसरा है सुल्तानी। अनिश्चितता के भंवर में किसान हमेशा से फंसा रहा है। कभी किसान अतिवृष्टि से प्रभावित होता है, कभी अनावृष्टि से। मौसम पर किसी का जोर नहीं चलता। इस मौसम की मार से बचने के लिए ही भारत में कृषि के आसपास ग्रामीण उद्योग धंधों की रचना की गई थी। ये ऐसे उद्योग-धंधे थे, जिनका असर खेती पर नहीं होता था, परंतु जब खेती में काम नहीं है, तब किसान फुर्सत के समय में इन धंधों से अपनी आजीविका चलाता था। इन उद्योगों में गोवंश आधारित उद्योग प्रमुख थे। इसके अलावा चटाई बनाना, आसन बनाना, दरी बनाना, कपड़ा बनाना, तेल निकालना, लोहे की वस्तुएं बनाना, लकड़ी का सामान बनाना, दतौन बनाना और भी ऐसे उद्योग जिनमें बड़ी मशीनों के बिना सामान्य हस्तकौशल से ग्रामोपयोगी वस्तुएं बनाई जाती थीं। यदि मौसम के कारण कभी फसल खराब भी हो जाए तो उसे अपनी बनाई वस्तुओं की बिक्री से आजीविका प्राप्त हो जाती थी। किसान पर मौसम की मार तो पड़ती ही है, सुल्तानी शक्तियों ने भी उसका शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। आज किसान या तो सरकार का मोहताज है या बाजार का। फसल की पैदावार से लेकर उसके पककर आने तक वह सरकार और बाजार का मुंह ताकने पर मजबूर है। बीज, खाद, रासायनिक कीटनाशक, ट्रेक्टर, पेट्रोल, डीजल, हार्वेस्टर ये सभी बाजार का एक अभिन्न अंग हैं। फसल तैयार होने के बाद भाव तय करने की जवाबदारी बाजार की है। सरकार में बैठे जिम्मेदार जननेता उस फसल का समर्थन मूल्य तय करते हैं, जिसे पैदा करने में उनका कोई योगदान नहीं है। किसान फसल बाजार में बेचने के लिए लाता है, तो उसका अंतिम मूल्य व्यापारी तय करता है। जब भी किसान को लगता है कि इस बार उसे फसल का उचित मूल्य मिलेगा, व्यापारी रिंग बनाकर भाव स्थिर कर देते हैं। किसान को मजबूर होकर व्यापारियों द्वारा तय किए गए भाव पर अपनी फसल बेचना पड़ती है। भारत के किसान के लिए एक उक्ति सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है कि किसान कर्ज में जन्म लेता है और कर्ज में ही मर जाता है। बाजार की शक्तियों से लड़ने की ताकत किसान के पास नहीं है। आज देश की सारी शक्ति सरकार और बाजार के पास बंधक रखी हुई है। भारत में हजारों सालों से खेती की जा रही है। बहुत कठिन समय में भी भारत की अर्थव्यवस्था चरमराने से इसलिए बची रही,

क्योंकि खेती इस देश का मुख्य आधार है। इस देश के करोड़ों किसान बाजार मुक्त जीवन-यापन करते हैं। लेकिन सरकारों ने किसानों को खेती की जरूरतों को पूरा करने के लिए बाजार का गुलाम बना दिया है। आज खेती में काम आने वाली ऐसी एक भी चीज नहीं है जिसके लिए किसान को बाजार न जाना पड़ता हो। सरकारों की अनीतियों ने किसान से उसके स्वावलंबन को छीन लिया है। देश के ग्रामीण उद्योग धंधों को नष्टप्राय कर दिया है। अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए इस देश के ग्रामीण उद्योग धंधों पर प्रहार किया और आजादी के बाद इस देश के व्यापारियों के हितों को सुरक्षित रखने के लिए ग्रामोद्योगों को संरक्षण प्रदान न करते हुए उनके हाल पर छोड़ दिया। महात्मा गांधी ने भारत को गांवों का देश कहा था और गांव को सशक्त बनाने के लिए खेती के साथ-साथ ग्रामोद्योगों को आर्थिक रचना के लिए अनिवार्य बताया, परंतु आजादी के बाद उनकी विचारधारा को पूरी तरह नकार दिया गया। इसका परिणाम हमें देश में बढ़ती बेरोजगारी और उजड़ते गांवों में दिखाई दे रहा है। आसमानी और सुल्तानी शक्तियों ने तंग आकर ही देश के एक करोड़ किसान खेती करना छोड़ चुके हैं। पिछले दस सालों में लगभग सवा लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं। मध्यप्रदेश में आई आपदा के बाद से किसान आत्महत्या कर रहे हैं। फसल नष्ट होने के बाद अब किसानों के पास चार माह कोई काम नहीं रहेगा। जो बड़े किसान हैं, उन्हें निश्चित ही मुआवजा भी अधिक मिलेगा और वे जमापूंजी से अपना काम चला लेंगे, लेकिन जिन किसानों की जमीन कम है। जो अपनी दैनंदिन जरूरतों के लिए जमीन पर ही आधारित हैं, उनकी दशा निश्चय ही विचारणीय है। किसी को भी एक सीमा तक ही आर्थिक मदद दी जा सकती है। आसमानी आपदा से निपटने के लिए सरकारों को अविलंब ग्रामीण उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करना चाहिए। सुल्तानी शक्तियों से छुटकारे के लिए प्रत्येक गांव को अपनी आजादी स्वयं सिद्ध कर लेनी चाहिए।